उपन्यास में नायक की बदलती हुई अवधारणा

डॉ. मकरन्द भट्ट,

व्याख्याता हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा

साहित्य का नायक प्राचीन काल से ही एक आदर्श व्यक्तित्व हुआ करता था।[1] आदिकवि वाल्मीकि के सामने भी यह प्रश्न खड़ा था कि अपने महाकाव्य में वह किसको नायक बनाकर प्रस्तुत करें? रामायण के आरम्भ में वाल्मीकि यह प्रश्न नारद से करते हैं और सर्वज्ञ नारद चारों ओर दृष्टि डालकर समग्र अतीत का अन्वेषण करके अपनी दृष्टि सर्वगुण सम्पन्न राम पर केन्द्रित करते हैं। वाल्मीकि को उत्तर देते हुए नारद कहते हैं कि सर्वगुण सम्पन्न नायक के रूप में राम ही 'नरपुंगव' हैं, जिन्हें महाकाव्य का नायक बनाया जाना चाहिए।

राम कैसे नायक हैं? कुलीन हैं, उनका शारीरिक सौष्ठव आकर्षक है, उनके भीतर वीरता साहस, क्षमाशीलता और करूणा जैसे गुण हैं, वे श्रेष्ठ धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त हैं।[2] कहने का अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल से ही नायक की अवधारणा एक विशिष्ट कोटि की रही है। **महाभारत और रामायण** जैसे महाकाव्यों में नायक का यही स्वरूप सामने आया है। सर्वाधिक बल नायक की कुलीनता पर दिया गया है। वह श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुआ होना चाहिए। तत्कालीन समाज में श्रेष्ठता, कुलीनता से निर्धारित होती थी। इसलिए प्राचीन काव्यों और नाटकों में राजकुमार ही नायक हुआ करते थे।

हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक दौर में यही अवधारणा रचनाकारों पर हावी थी, यही कारण है कि उपन्यास विधा आधुनिक काल की साहित्यिक विधा होते हुए भी उस पर सामन्ती युग के मापदण्ड ही हावी थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, **परीक्षा–गुरु, भाग्यवती, चंद्रकान्ता सन्तति** आदि आरम्भिक उपन्यास कुलीनता की इसी अवधारणा का पालन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। **परीक्षा–गुरु** के नायक लाला मदन मोहन एक सम्पन्न और कुलीन घराने के युवक हैं। उनका अच्छा खासा जमा हुआ व्यापार है। जीवन की समस्त सुख सुविधाएँ उनके पास हैं। युवक मदन मोहन पश्चिमी प्रभाव से आयी हुई आधुनिक जीवन शैली की चपेट में आ जाते हैं और यहीं से उनके जीवन में पतनशीलता का दौर शुरू हो जाता है। परिस्थितियों के दुष्चक्र में फँस कर वे मदिरा का सेवन करने लगते हैं क्लब में जाकर अपना समय गँवाने लगते हैं उनका व्यापार चौपट हो जाता है और गृहस्थी बरबाद हो जाती है। विपरीत परिस्थितियाँ ही लाला मदनमोहन को सन्मार्ग पर लाती हैं। जीवन की परीक्षा ही उसे गुरू के रूप में पुनर्स्थापित करती है।

इस उपन्यास की भांति देवकीनन्दन खत्री का **चन्द्रकान्ता सन्तति** भी **राजकुमार वीरेन्द्र सिंह** को ही नायक के रूप में चित्रित करता है। वह कुलीन है, साहसी है, शूरवीर है, योद्धा है, उदार और धैर्यशील है। उसके व्यक्तित्व में भी उपन्यासकार ने सामन्ती मूल्यों को उभारा है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास का आरम्भिक दौर नायक को इसी साँचे में ढालकर प्रस्तुत करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आरम्भिक दौर के हिन्दी उपन्यासकार नायक का चरित्र चित्रण करते समय इसी परिपाटी का पालन करते दिखाई पड़ते हैं।

उपन्यास पर काव्यशास्त्रीय लक्षण लागू नहीं किये जा सकते हैं। यह तो आधुनिक दौर की साहित्यक विधा है। पश्चिमी उपन्यासों में प्रजातान्त्रिक मूल्यों का समावेश हो चला था।[3]

उनकी देखा–देखी बांग्ला और मराठी उपन्यास भी इन्हीं मूल्यों और मान्यताओं का अनुसरण करने लगे। उपन्यास का जन्म ही आधुनिक परिस्थितियों की देन कहा जा सकता है–जब पुरानी सामाजिक रचना, औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पश्चिम में ध्वस्त होने लगी थी और नये मध्य वर्ग का जन्म होने लगा था। आधुनिकता का यह दौर भारत में भी शुरू हुआ। इसका प्रभाव लेखकों पर पड़ना स्वाभाविक था। इसलिए बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों में जब प्रेमचन्द के उपन्यास प्रकाशित होने लगे तो उनमें मध्यवर्ग का नायक उभर कर सामने आया। **कायाकल्प** का नायक **चक्रधर** इसी का उदाहरण है, वह सामान्य घर का आर्थिक अभावों से जूझते हुए परिवार का शिक्षित युवक है। जीवन संघर्षों में जूझते हुए वह अपना रास्ता खोजता है। प्रेमचन्द के नायकों में कुलीनता के स्थान पर इसी साधारणता के दर्शन होते हैं। धीरे–धीरे नौकरी पेशा लोग, साधारण मुलाजिम, प्रेमचन्द के साथ–साथ **पाण्डे बेचन शर्मा 'उग्र' प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवती प्रसाद वाजपेयी, आचार्य चतुरसेन** आदि उपन्यासकारों ने इसी कोटि के चरित्रों को अपने उपन्यासों का नायक बनाया। कहने का अभिप्राय यह है कि कुलीनता उच्चवंश में जन्म लेना, धनाढ्य होना अब नायक बनने की आवश्यक शर्तें नहीं रही। इसके स्थान पर धनाभाव, गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक अभाव और ऐसी ही परिस्थितियों में नायक चित्रित होने लगा। उपन्यास का नायक अब कुलीनता के उच्च सोपान से बहुत नीचे उतर आया। उदाहरण के लिये **सेवासदन, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, रंगभूमि और कर्मभूमि** जैसे उपन्यासों को लिया जा सकता है। इन सभी में मध्यवर्ग और निम्न मध्य वर्ग के नायक दिखाई पड़ते हैं।

नायक की बदलती हुयी अवधारणा में मानव मनोविज्ञान के प्रवेश से भी एक बड़ा परिवर्तन घटित हुआ। पहले नायक को महिमा मण्डित करके आदर्श के धरातल पर रखा जाता था। मनोविज्ञान की सोच ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक मनुष्य अपने में अच्छाई और बुराई का सम्मिश्रण होता है। मानवीय दुर्बलता मनुष्य की स्वाभाविक पहचान है। वह कभी भी परिस्थिति के कारण अपराध की चपेट में आ सकता है। गबन का नायक इसका उदाहरण है।[4] म्युनसिपैलिटी में एक मामूली नौकरी करने वाला क्लर्क अपनी नव विवाहिता पत्नी की आभूषणों की भूख मिटाने हेतु सरकारी खजाने से गबन करता है और फिर पुलिस के डर से भागता फिरता है। इसी प्रकार अन्य उपन्यासकारों ने भी अपनी रचनाओं में नायक को मनोवैज्ञानिक दुर्बलताओं का शिकार होते हुए दिखाया है।

जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द जोशी जैसे लेखकों की रचनाएँ मानव मनोविज्ञान की गहराइयों में उतर कर हीनभावना, कामुकता, अहंभाव ओर विद्रोही मनोवृत्ति को केन्द्र में रखकर अपने नायकों का चित्र खींचने लगीं। **सुनीता का 'हरि प्रसन्न' शेखर एक जीवनी का 'शेखर', नदी के द्वीप का 'भुवन' जहाज का पंछी** का नायक, सब इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं। ये सब मानवीय दुर्बलताओं के बीच जीवन जीने वाले युवक हैं। आधुनिक मनोविज्ञान ने मानव चरित्र को इसी कोण से देखने का प्रयास किया है। यहाँ तक कि परिवारों के टूटन, दाम्पत्य जीवन में आया हुआ बिखराव, सब इन्हीं दुर्बलताओं के कारण दिखाई पड़ता है। हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के कारण नायक का स्वरूप बहुत बदल गया।

हिन्दी उपन्यास में व्यक्ति चरित्र के साथ–साथ प्रतीक चरित्र की रचना की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है अर्थात् नायक अपना व्यक्तित्व बनाये रखता है और साथ ही वह एक वर्ग का भी प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यासकार अपने नायकों की रचना करते समय वैयक्तिकता और सामूहिकता के दोनों पहलुओं को ध्यान में रख कर अपने नायकों की सर्जना करने लगे इसका

उदाहरण **गोदान का होरी** है। **होरी** के रूप में उपन्यास का नायक एक विशेष महत्व रखने वाला चरित्र है। आलोचकों ने गोदान के नायक **होरी** को भारत के कृषक वर्ग के प्रतिनिधि चरित्र के माना है। होरी अपने में पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक साधारण गाँव का धर्म भीरू और कर्ज की चक्की में पिसता हुआ किसान है जो धीरे–धीरे बदली हुई परिस्थितियों के कारण एक भूमिहीन मजदूर बन जाता है। प्रेमचन्द होरी के माध्यम से बीसवीं सदी के चौथे दशक में ग्रामीण भारत की दुर्दशा का चित्र खींचते हैं और गोदान के नायक को समग्र भारत के कृषक वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र का स्वरूप प्रदान करते हैं। उपन्यास में होरी का आगमन एक बड़ी घटना है और उपन्यास के पाठकों के लिये एक विचार करने योग्य प्रसंग है कि नायकों की अवधारणा किस प्रकार बदलती जा रही है।

प्रेमचन्द के बाद उपन्यास लेखन का नया दौर शुरू होता है। **भगवती चरण वर्मा, यशपाल, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' वृंदावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, अमृतलाल नागर** जैसे रचनाकार हिन्दी उपन्यास में नायकों की नवीन परिकल्पना के साथ सामने आते हैं। **बूँद और समुद्र** का **'महिपाल', झूठा–सच का 'पुरी', अमृत और विष** का **'रमेश'** नायकों की इसी कोटि में रखे जा सकते हैं। आगे चल कर हिन्दी उपन्यास लेखन में गति आती है, नवीन प्रयोग आते हैं, परिणाम स्वरूप ऐसे उपन्यास सामने आते हैं, जो नायक विहीन हैं। आँचलिक उपन्यासों में लेखकों ने अँचल विशेष को ही नायक के रूप में चित्रित किया है। **फणीश्वरनाथ 'रेणु'** के उपन्यास **मैला आँचल** में या **परती परिकथा** में **बिहार के पूर्णिया** जिले को ही नायक बना दिया है। इसी प्रकार **शिवप्रसाद सिंह** के उपन्यास **'अलग–अलग वैतरणी', राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग', कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान'** जैसी रचनाओं में भी नायक विहीनता उभारी गयी है।

उपन्यास लेखन का वर्तमान दौर इसी परिस्थिति की देन है। इक्कीसवीं शताब्दी में वैश्वीकरण, नवीन पूँजीवाद साँस्कृतिक मूल्यों के विघटन के फलस्वरूप आने वाले दिनों में उपन्यासों में कैसे चरित्र आएंगे इसका केवल अनुमान भर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए **मनोहर श्याम जोशी** के उपन्यास **'कुरू–कुरू स्वाहा'** को लें, तो यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि लेखक ने नायक की प्रतिमा विखंडित की है वह टुकड़ों में बँटा हुआ व्यक्तित्व है। वह परम्परावादी भी है, आधुनिक भी है। मानवीय दुर्बलताओं का केन्द्र भी है और संघर्षशील परिस्थितियों में अपना रास्ता टटोलता हुआ राहगीर भी। कुल मिलाकर इक्कीसवीं शताब्दी में मानव नियति कुछ ऐसा ही दृश्य प्रस्तुत करती है। सम्भव है कि भविष्य में कोई प्रौढ़ रचनाकार सामने आये और अपनी सृजनशीलता से नायक की अवधारणा को कोई नया रूप प्रदान करें। फिलहाल उपन्यास लेखन में प्रयोगशीलता चल रही है। उसका भावी स्वरूप क्या होगा, इसका सिर्फ अनुमान ही लगाया जा सकता है।

कुल मिलाकर हिन्दी उपन्यास में नायक की बदलती हुई अवधारणा को बदली हुई परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में रखकर समझा जा सकता है। जैसे–जैसे बाह्य यथार्थ बदलेगा, राजनीतिक, सामाजिक और साँस्कृतिक परिस्थितियाँ परिवर्तित होंगी वैसे–वैसे मानव जीवन की जटिलताएं सामने आती रहेंगी। इन्हीं के संघात से भावी हिन्दी उपन्यास का नायक सामने आ पायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नेता विनोतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः। रक्तलोकः शूचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा।। बुध्युत्साहस्मृति प्रज्ञाकलामानसमन्वितः। शूरो दृदश्च

तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।। धनंजय – दशरूपक 2/1–2

2. वाल्मीकि रामायण–बालकाण्ड, प्रथम सर्ग
3. ''हिन्दी उपन्यास के स्वरूप निर्माण में पाश्चात्य उपन्यासकारों का हाथ रहा है।'' नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ. 158
4. ''मनोविज्ञान की आधारभूमि पर संयमित समस्याओं घटनाओं परिस्थितियों का पात्रों का संतुलित चित्रण ''गबन'' से आरम्भ होता है।'' नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ. 163

Copyright © 2013. *Dr Makarand Bhatt*. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.